बुद्धि से वंचित बनाए रखने की साज़िश

प्रमोद भार्गव

आपको शायद विश्वास न होगा कि उत्तरी अमरीकी देश कनाडा के सरकारी स्कूलों में आदिवासी समुदाय के विद्यार्थी यदि मातृभाषा में बातचीत करते हैं तो बतौर सज़ा उनकी जीभ में आलपिन चुभाई जाती है। यही नहीं दलित, आदिवासी और पिछड़ों को इन देशों में विद्या और बुद्धि से वंचित बनाए रखने के लिए वहां के वैज्ञानिक और बुद्धिजीवी इस बात की वकालत भी कर रहे हैं कि इनकी बेहतरी के लिए सरकारी स्तर पर जो कोशिशें चल रही हैं, उन्हें तत्काल बंद किया जाए, क्योंकि ये लोग तो अनुवांशिक रूप से ही मंदबुद्धि और पिछड़े हैं और ऐसे ही रहेंगे। ये बातें हाल ही में आदिवासी हकों की लड़ाई को आगे बढ़ाने के लिए ग्वालियर से दिल्ली निकाली गई जनादेश यात्रा में ब्रिटिश कोलंबिया के आदिवासी राजा शॉन एटलियो ने कही।

एटलियो पारंपरिक राजा होने के साथ-साथ लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अंतर्गत निर्वाचित प्रतिनिधि हैं और वहां के चार लाख आबादी वाले 23 आदिवासी कबीलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका कहना है कि कनाडा की सरकार आदिवासियों की भाषा पर हमला कर उनकी सांस्कृतिक पहचान ही लुप्त कर देना चाहती है। इस समुदाय की सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने वाली ऐसी 53 भाषाएं हैं जिनमें से 50 भाषाओं का अस्तित्व खतरे में है। शिक्षा के क्षेत्र में जातीय भेद झेल रहे इन आदिवासियों को स्वास्थ्य की बेहतरी एवं सामाजिक जागरूकता के लिए जो सुविधाएं व कार्यक्रम सरकारी स्तर पर हासिल हैं उनको भी समाप्त करने की मांग प्रखर हो रही है। इससे ज़ाहिर होता है कि दुनिया को सांप्रदायिक सद्भाव और मानवाधिकार का संदेश देने वाले युरोपीय देशों की सोच नस्लीय होने के साथ-साथ वंशानुगत स्तर पर रंगभेद से भी जुड़ी है। विचारणीय मुद्दा यह है कि बुद्धि के क्षेत्र में श्रेष्ठता के लिए शैक्षिक अवसरों की ज़रूरत है अथवा यह किसी वंशानुगत आधार की मोहताज है?

दरअसल मानव समूहों के बीच मानसिक स्तर में इस तरह की कोई भिन्नता नहीं है। स्वीडन के प्रकृतिविद कार्ल लीनियस 1778 में मानव समूहों के शारीरिक लक्षणों के आधार बुद्धि की श्रेष्ठता सिद्ध करने वाले सबसे पहले वैज्ञानिक थे। लीनियस ने एशिया में रहने वाले मनुष्यों को निर्दयी, कंजूस, ज़िद्दी व दुखी, अफ्रीकी मनुष्य को ईर्ष्यालु, चालाक, आलसी व निराशावादी और युरोपीय मनुष्य को गतिशील, बुद्धिमान और अन्वेषक घोषित करने की पक्षपातपूर्ण दलीलें प्रस्तुत की थीं।

1938 में कुछ जर्मन मानव विज्ञानियों ने अपने शोधपत्रों में उपरोक्त अवधारणा की पुष्टि करते हुए तय किया कि अनुवांशिक मानसिक नस्लीय लक्षणों का अस्तित्व होता है। इन वैज्ञानिकों ने यह भी दावा किया कि ऑस्ट्रेलियाई आदिवासी अपनी संकीर्ण मानसिकता के कारण विलोपशील होते जा रहे हैं। जबकि न्यूज़ीलैंड के माओरी आदिवासी अपनी प्रजाति को विलुप्त होने से इसलिए बचा पाए क्योंकि उन्होंने युरोपीय संस्कृति को आत्मसात कर लिया था।

इन वैज्ञानिकों ने यह उदाहरण इसलिए दिया क्योंकि इससे युरोपीय मानव के जन्मजात सांस्कृतिक संस्कारों की श्रेष्ठता साबित होती थी। हालांकि ऑस्ट्रेलियाई आदिवासी समूह, जिसके लुप्त होने का दावा किया गया था, वह विलुप्त नहीं हुआ है और उसके वंश की धीमी गति से वृद्धि हो रही है।

नस्लवादी अवधारणाओं की पुष्टि करने के लिए चार्ल्स मुरे और रिचर्ड हैरंस्टेन ने 'द बेल कर्व' नामक पुस्तक भी लिखी। इस पुस्तक में दावा किया गया कि व्यक्ति में बुद्धि और सामर्थ्य जन्मजात व अनुवांशिक है। इस आधार पर अमरीकी समाज का तुलनात्मक अध्ययन करके यह साबित करने की कोशिश की गई है कि बुद्धि के मामले में अमरीका में अश्वेतों से श्वेत ज़्यादा आगे हैं और श्वेतों की इस बेहतरी का कारण उनमें मौजूद उत्तम कोटि के जीन हैं। लिहाज़ा जो गरीब, दलित, पिछड़े अर्थात अबुद्धि और अक्षमताओं के

प्रतीक हैं उनकी शैक्षिक और आर्थिक मदद करके उनके उद्धार की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन्हें तो यह अभिशाप उनमें मौजूद जीन्स के कारण भोगना पड़ रहा है। करोड़ों डॉलर खर्च करके भी उन्हें इस अभिशाप से छुटकारा नहीं मिल सकता।

लाचारों के प्रति इस तरह की दुर्भावना कुछ उसी तरह की है जिस तरह की हमारे देश में दलित, हरिजन, आदिवासी और कुछ पिछड़ी जातियों के प्रति रही है। लेकिन स्वतंत्र भारत में जब उन्हें शिक्षा और सरकारी सेवा के क्षेत्र में संवैधानिक अधिकार मिले तो उन्होंने जिस क्षेत्र में भी अवसर मिले, बौद्धिकता के परचम फहराए और वैचारिक स्तर पर भी अपनी बौद्धिक कुशाग्रता सिद्ध की। इससे तय हुआ कि बुद्धि कौशल, बौद्धिकता हासिल करने के उपायों से वंचित कर देने की अपेक्षा वंचितों को समान अवसर देने की ज़रूरत है।

हाल ही में अमरीका में कोलंबस के मूल्यांकन को लेकर दो दृष्टिकोण सामने आए हैं। इनमें से एक दृष्टिकोण उन लोगों का है जो अमरीकी मूल के हैं और जिनका विस्तार व वजूद उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका के अनेक देशों में है। दूसरा दृष्टिकोण उन लोगों का है जो दावा करते हैं कि अमेरिका का अस्तित्व ही हम लोगों ने खड़ा किया है। इस धारणा की वकालत करने वाले अफ्रीका से गुलाम बनाकर लाए गए अश्वेत (काले) और रेड इण्डियन भी हैं। इन वंशजों का दावा है कि कोलंबस अमरीका में इन लोगों के लिए मौत का पैगाम लेकर आया था क्योंकि कोलंबस के आने तक अमरीका में इन लोगों की आबादी बीस करोड़ के करीब थी, जो अब घटकर दस करोड़ रह गई है।

नस्लवादी वैज्ञानिक व लेखकों द्वारा अमरीकी समाज को वर्ण व्यवस्था की दृष्टि से विभाजित करने की कोशिशों की पृष्ठभूमि में यह तथ्य भी है कि एशियाई मूल के लोग अमरीका में ही बौद्धिक क्षेत्रों में लगातार प्रभुत्व स्थापित करते जा रहे हैं। ऐसे लोगों में भारत से पलायन कर इन देशों में जा बसे लोगों की एक बहुत बड़ी संख्या भी है। ये अपने विषय में इतनी महारत रखते हैं और अपने कर्तव्य के प्रति इतने प्रतिबद्ध व जागरूक रहते हैं कि अपनी सफलताओं और उपलब्धियों से खुद तो लाभान्वित हुए ही अमरीका को भी लाभ पहुंचाने में पीछे नहीं रहे। लेकिन कर्मठता से हासिल होने वाला यह सम्मान अमेरिका व ब्रिटेन में हुए आतंकवादी हमलों के बाद अभिशाप में भी बदलने लगा है। नस्लवादी सोच के चलते रंगभेदी विभाजन के शिकार भारतीय तथा एशियाई मूल के अन्य लोग भी होने लगे हैं।

यदि केवल जीन ही बुद्धि का आधार अथवा पर्याय होती तो आज युरोप के तमाम देशों के बौद्धिक क्षेत्रों में एशियाई व अफ्रीकी देशों के लोग कैसे स्थापित हो पाते? इसी तरह दुनिया के अनेक क्षेत्रों में जहां भारतीय मूल के लोग बड़ी संख्या में हैं, कभी गुलाम बनाकर बेगार कराने के लिए ले जाए गए थे। इनके साथ वहां के शासकों ने दोयम दर्ज़े का व्यवहार किया और विकास के हर क्षेत्र से वंचित रखने की कोशिशें भी की। इसके बावजूद कालांतर में ये लोग अपनी बौद्धिक क्षमता, इच्छाशक्ति व कर्तव्यनिष्ठा के बलबूते शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, साहित्य व प्रशासन के सर्वोच्च पदों पर पहुंचे और गौरवान्वित हुए। इन देशों में बौद्धिक क्षेत्रों में काले व बुद्धिहीन कहे जाने वाले लोगों का ज़बर्दस्त दखल है। यदि कुशाग्र बुद्धि और प्रत्युत्पन्न मति के पीढ़ीगत या वंशानुगत अधिकारी गोरे ही थे तो यह कैसे संभव हुआ?

ये नस्लवादी, कथित वैज्ञानिक व लेखक अश्वेतों की बौद्धिक कुशाग्रता से आक्रांत हैं और समझ रहे हैं कि युरोपीय देशों में बसे काले अथवा रेड इंडियन्स को मिलने वाली निःशुल्क शिक्षा व स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं पर अंकुश नहीं लगाया गया तो कालांतर में वे बुद्धि के हर क्षेत्र में काबिज हो जाएंगे। इससे उन लोगों के पिछड़ जाने की आशंका है जो खुद को प्रतिभा का धनी मानते हैं। वे वंचितों को कुछ बांटना नहीं चाहते। कनाडा के सरकारी स्कूलों में मातृभाषा बोलने पर सुई चुभो देने की ऐसी यंत्रणा बुद्धि से वंचित कर देने की स्थितियां पैदा करने के तरीके हैं जिससे असहाय, गरीब, दलित व आदिवासी यथास्थिति में बने रहें और बौद्धिक क्षेत्रों में प्रतियोगी बनने के लिए ज़रूरी शिक्षा ही हासिल न कर पाएं। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***